International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182 Print ISSN: 2349-5979
www.allsubjectjournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2016; Page No. 404-406

इलाहाबाद जनपद में कृषि परक संस्कृति का विकास एवं अधिवास प्रक्रिया

[1] देवेन्द्र प्रताप मिश्र, [2] नवनीत द्विवेदी, [3] दिब्या त्रिपाठी

[1] (अतिथि प्रवक्ता) प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, सी. एम. पी. डिग्री कालेज (इलाहाबाद विश्वविद्यालय), इलाहाबाद।

[2] (प्रवक्ता इतिहास) डायेट, इलाहाबाद।

[3] सहायक अध्यापिका बेसिक षिक्षा, परिषद, इलाहाबाद।

शोध पत्र–सार
मेरे अध्ययन का विषय मध्य गंगा के मैदान में स्थित विशेषतः पूर्वी उत्तर प्रदेश में कृषि परक संस्कृति का विकास इसमें भी संस्कृति विशेष–'' अधिवास प्रक्रिया और जीवन है।'' अधुनातन नवीनतम अनुसंधानों से जो तथ्य प्रकाश में आये हैं, मध्य गंगा घाटी ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतीय इतिहास की न केवल प्रागैतिहासिक संस्कृति अपितु आद्यैतिहासिक एवं इतिहास के क्षेत्र में नये महत्वपूर्ण आयाम जुड़े हैं, चाहे वह लोहे की प्राचीनता से सम्बन्धित नवीन तथ्य हों अथवा प्रथम कृषि प्रयोक्ता संस्कृति से सम्बन्धित प्रमाण हो, सभी क्षेत्रों में प्राप्त नवीनतम साक्ष्यों के सन्दर्भ में पुनः गहन विचार की आवश्यकता है, क्योंकि जहाँ पर पहले पूर्वी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में मध्य पाषाण कालीन संस्कृति के स्थल प्रकाश में आये थे किन्तु नवपाषाण कालीन संस्कृति के स्थलों का न मिलना अनेक सवालों को जन्म देता था, लेकिन अब इन अनुत्तरित प्रश्नों का हल झूंसी, लहुरादेवा, मलहर, राजानल का टीला आदि स्थलों के उत्खनन से सहजमेव मिल गया है। इन स्थलों से लोहे की प्राचीनता तथा नवपाषाण कालीन जमावों से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण साक्ष्य प्राप्त हुए है जिनसे लोहे की प्राचीनता को जहाँ पर 1800 B.C. तक सहजमेव ले जाया जा सकता है वहीं पर नवपाषाण कालीन संस्कृति के इन स्थलों से कृषि जनित महत्वपूर्ण साक्ष्यों के मिलने से प्रथम कृषक संस्कृति को 8000 B.C. तक निर्विवाद रूप से ले जाया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि उपरोक्त सभी स्थल पूर्वी उत्तर प्रदेश में आते हैं।

मुख्य–शब्दः– कृषि परक संस्कृति, विकास एवं अधिवास, इलाहाबाद जनपद

मूल प्रतिपादन

मध्य गंगा घाटी में स्थित पूर्वी उत्तर प्रदेश प्राचीन काल से ही यहाँ के निवासियों के लिए जीवन निर्वाह हेतु प्रचुर खाद्य सामग्री के उत्पादन का क्षेत्र रहा है। गंगा नदी इस भू–भाग में प्रवाहमान यहाँ की जीवन रेखा रही है। यह न केवल उत्तर प्रदेश अपितु समूचे देष की सांस्कृतिक विरासत का आधार रही है। गंगा नाम से प्रसिद्ध यह विषाल नदी जनभावनाओं से जुड़ी भारतीय उपमहाद्वीप की प्राचीनतम् पवित्र नदियों में सर्वोच्च स्थान रखती है। गंगा नदी सदियों से भारतीय जनमानस की प्रेरणा स्रोत रही है। सभ्यता के प्रारम्भिक काल से ही न जाने कितनी प्राचीन सभ्यतायें गंगा घाटी में निरन्तर पुष्पित, पल्लवित ओर तिरोहित होती रही, न जाने कितनी सभ्यताओं के उतार–चढ़ाव को यह नैसर्गिक रुप से देखती व सुनती रही। इस पवित्र नदी की महत्ता का वर्णन आदि काल से न केवल पौराणिक, अध्यात्मिक साहित्य में मिलता है अपितु लौकिक साहित्य में भी इसकी महत्ता की अनेकानेक कथाएं, अर्न्तकथाएं प्राप्त होती हैं ।[1]

गंगा का मैदान उत्तर में हिमालय और दक्षिण में विन्ध्य पर्वत श्रृंखला के मध्य में स्थित है। गंगा के मैदान को तीन प्रमुख भागों मे बांटा जा सकता है।

1– ऊपरी गांगेय मैदान या गंगा यमुना दोआब जो मोटे तौर पर पूर्व में इलाहाबाद तक फैला हुआ है।
2– मध्य गांगेय मैदान, जो मोटे तौर पर पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार है और राजमहल पहाड़ियो तक फैला हुआ है।
3– निम्न गांगेय मैदान जो पष्चिम बंगाल और डेल्टा तक फैला हुआ है[2]।

मेरे अध्ययन का विषय मध्य गंगा के मैदान में स्थित विशेषतः पूर्वी उत्तर प्रदेश में कृषि परक संस्कृति का विकास इसमें भी संस्कृति विशेष – ''अधिवास प्रक्रिया और जीवन है।'' अधिवास पुरातत्व अथवा Settlement Archaeology पुरातत्व के अध्ययन के विषय में अपेक्षाकृत नवीन किन्तु सुपरिचित शब्द हैं। मानव सभ्यता की कहानी के अध्ययन के विभिन्न पहलुओं में अधिवास प्रक्रिया का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। अधिवास प्रक्रिया का सम्बन्ध विशेषकर क्षेत्र या स्थान विशेष से भी है क्योंकि क्षेत्र विशेष में प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता मानव की अधिवास प्रक्रिया व कृषि विकास को प्रभावित करती है।

अधिवास शब्द से अलग के व्यवस्थित या समुचित चयन एवं रहने का बोध होता है लेकिन इसे परिभाषित स्वरूप प्रदान करें तो ''मानव के द्वारा अपने आवास के लिए समुचित आवास का चुनाव एवं उसके मूल में तत्सम्बन्धी समस्त अनुकूलताएं साथ ही संचरणगत व्यवस्थाओं को हम अधिवास प्रक्रिया के अन्तर्गत रखते हैं।'' यह आवश्यक नहीं है कि उसके लिए किसी एक टाइप्ड मॉडल को स्वीकार कर लिया जाय अपितु समय एवं विशेषतः स्थान विशेष के सन्दर्भ में उपरोक्त बिन्दुगत तथ्यों में परिवर्तन अपेक्षित है। पाश्चात्य पुरातत्वविदों एवं नृतत्व शास्त्रियों ने अधिवास पुरातत्व के क्षेत्र में अग्रणी कार्य किया है। यहाँ तक कि अब तो सामान्य रूप से पुरातात्विक स्थलों के उत्खनन में अधिवासगत प्रक्रिया के अध्ययन को दृष्टिगत रखते हुए उत्खनन कार्य किया जा रहा है। इसमें क्रमशः अधिवास के सन्दर्भ में विकसित होती अवधारणाओं का समुचित अध्ययन सहजमेव सम्भव है। इस दिशा में परसन[3], मारगन, विली, ट्रिगर, बी0जी0 चाइल्ड[4], बिनफोर्ड[5] का नाम लिया जा सकता है। भारत में अधिवास पुरातत्व के अध्ययन के क्षेत्र में अपेक्षाकृत कम कार्य हुआ है, यद्यपि ब्रह्मदत्त, एम0के0

धवलीकर[6], आर0एस0 पप्पू, मक्खन लाल, जार्ज इरडोसी, वी0डी0 मिश्र[7], जे0एन0 पाण्डेय[8], रेबारे, जे0एन0 पाल[9], ए0के0 दूबे[10] ने इस दिशा में अपने अध्ययन विशेष में पुराविदों का ध्यान आकर्षित किया है।'' ऊपरी गंगा घाटी में मक्खन लाल[11], मध्य गंगा घाटी में जे0एन0 पाण्डेय. जे0एन0 पाल व ए0के0 दुबे तथा निम्न गंगा घाटी में रेबारे के अध्ययन महत्वपूर्ण हैं।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में लगभग 27 जिले सम्मिलित किया जा सकता हैं जो उत्तर में बहराइच ($27^0$34′ उत्तरी अक्षांष तथा $81^0$38′ पूर्वी देशान्तर) से दक्षिण में रार्बट्सगंज ($25^0$10′ उत्तरी अक्षांष तथा $82^0$37′ पूर्वी देशान्तर) व पश्चिम में बाराबंकी ($26^0$56′ उत्तरी अक्षांष तथा $81^0$13′ पूर्वी देशान्तर) से पूर्व में बलिया ($25^0$44′ उत्तरी अक्षांष तथा $84^0$11′ पूर्वी देशान्तर) तक 90293 वर्ग कि0मी0 के विस्तृत भूभाग में फैला हुआ है[12]। विषय चयन के पीछे मेरा मूल उद्देश्य यह है कि चूँकि आद्यैतिहासिक काल से ही मानव ने अधिवास का स्थायी रूप से चयन किया एवं उत्तरोत्तर इस दिशा में सुधार होता चला गया, इसलिए प्रारम्भ से अध्ययन करना समीचीन होगा। हमारा प्रयास है कि प्राप्त संस्कृतियों के संदर्भ में सम्पूर्ण पूर्वी उत्तर प्रदेश का अधिवास प्रक्रिया की दृष्टि से एक समुचित तस्वीर प्रस्तुत हो सके। हमारे अध्ययन का आधार परम्परागत रूप से प्राप्त पुरातात्विक संस्कृतियों यथा—गैरिक मृदभाण्ड संस्कृति व ताम्रनिधि संस्कृति, काली और लाल पात्र परम्परा संस्कृति व उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा संस्कृति है। अब तक के उत्खननों व सर्वेक्षणों से उपरोक्त संस्कृतियों से सम्बन्धित पूर्वी उत्तर प्रदेश में लगभग 250 से अधिक स्थल प्रकाश में आ चुके हैं[13] तथा इनमें से अनेक स्थलों का सीमित व व्यापक पैमाने पर उत्खनन कार्य भी हो चुके हैं। सर्वेक्षणों व उत्खननों से प्राप्त प्रमाणों के आलोक में अधिवास प्रक्रिया के विषय में क्रमशः विकसित होती पृथक—पृथक परम्पराओं के अध्ययन व विश्लेषण के साथ मैंने उपरोक्त संस्कृतियों को पृथक—पृथक करके अधिवास प्रक्रिया के आधारभूत तथ्यों के आधार पर विवेचन व प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

अधुनातन नवीनतम अनुसंधानों से जो तथ्य प्रकाश में आये हैं, मध्य गंगा घाटी ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतीय इतिहास की न केवल प्रागैतिहासिक संस्कृति अपितु आद्यैतिहासिक एवं इतिहास के क्षेत्र में नये महत्वपूर्ण आयाम जुड़े हैं, चाहे वह लोहे की प्राचीनता से सम्बन्धित नवीन तथ्य हों अथवा प्रथम कृषि प्रयोक्ता संस्कृति से सम्बन्धित प्रमाण हो, सभी क्षेत्रों में प्राप्त नवीनतम साक्ष्यों के सन्दर्भ में पुनः गहन विचार की आवश्यकता है, क्योंकि जहाँ पर पहले पूर्वी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में मध्य पाषाण कालीन संस्कृति के स्थल प्रकाश में आये थे किन्तु नवपाषाण कालीन संस्कृति के स्थलों का न मिलना अनेक सवालों को जन्म देता था, लेकिन अब इन अनुत्तरित प्रश्नों का हल झूंसी, लहुरादेवा, मलहर, राजानल का टीला आदि स्थलों के उत्खनन से सहजमेव मिल गया है। इन स्थलों से लोहे की प्राचीनता तथा नवपाषाण कालीन जमावों से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण साक्ष्य प्राप्त हुए है जिनसे लोहे की प्राचीनता को जहाँ पर 1800 B.C. तक सहजमेव ले जाया जा सकता है वहीं पर नवपाषाण कालीन संस्कृति के इन स्थलों से कृषि जनित महत्वपूर्ण साक्ष्यों के मिलने से प्रथम कृषक संस्कृति को 8000 B.C. तक निर्विवाद रूप से ले जाया जा सकता है[14]। उल्लेखनीय है कि उपरोक्त सभी स्थल पूर्वी उत्तर प्रदेश में आते हैं।

मानव के स्थायी अधिवास की शुरूआत नवपाषाणकाल में हुई, उत्तरोत्तर उसमें परिवर्धन होते गये ताम्र पाषाण युग में तत्कालीन मानव ने मानव अधिवास प्रक्रिया की सही परम्परा स्थापित कर दी। मैंने प्राप्त नवीनतम उत्खननों व सर्वेक्षणों से उपलब्ध साक्ष्यों के आलोक में इस क्षेत्र में स्थापित अधिवास परम्परा का क्रमशः विवेचन, विश्लेषण व प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

मध्य गंगाघाटी की नवपाषाणिक अर्थव्यवस्था विषेषकर कोल्डिहवा की कृषि पर पूर्णतः निर्भर थी। यहां के उत्खनन से चावल के दाने, भूसी, गेहूँ, जौ, मटर, उर्द के अवषेष प्राप्त हुए है। जली मिट्टी के टुकड़ो में भी धान की भूसी प्राप्त हुई हैं। धान कृषि उत्पादित (ओराइजा व सताइवा) और जंगली अवस्था (ओराइजा व कूफीपोगान) दोनों प्रकार के प्राप्त हुए हैं। जंगली धान की एक प्रजाति ओराइजा पेरेनिष अभी भी उड़ीसा में पायी जाती है। ऐसा माना जाता है कि गंगाघाटी और भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरवर्ती भाग में धान की खेती का प्रारम्भ हुआ[15]। सम्भवतः नवपाषाणिक संस्कृति के समय जंगली अवस्था में धान की खेती का प्रारम्भ हुआ। लगता है कि धान की खेती का प्रारम्भ चिरांद, कोल्डिहवा, तथा महगड़ा में हुआ, जहां से जंगली और पालतू दोनों अवस्था का धान प्राप्त हुआ है। अन्य खाद्यानों कि उदभव के बारे में निष्चित प्रमाण नहीं है। मूंग का मूल क्षेत्र भारत को माना जाता है। उत्तर प्रदेश कि तराई क्षेत्र में जंगली प्रजाति की एक मूंग उत्पन्न होती है जो सम्भवतः पष्चिमी एषिया से आयी थी। जिसके प्रमाण उत्तर भारत और पष्चिमी भारत से मिले है। भारत में गेहूँ, जौ, मूंग जो चिरांद के उत्खनन से प्राप्त हुए हैं। उनके उद्भव के बारे में निष्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता। ऐसा लगता है कि इलाहाबाद जनपद के नवपाषाणिक मानव को कृषि चक्र के बारे में पूरी जानकारी थी। क्योंकि धान जैसी खरीफ की गेंहू, जौ, मूंग जैसी रबी की फसलों के प्रमाण प्राप्त हुए हैं[16]। सम्भवतः बरसात के तुरन्त बाद नम भूमि में बीज बो दिये जाते थे और लघु पाषाणो से निर्मित हँसिये जैसे उपकरणों से फसल पक जाने के बाद काटा जाता था।

सम्भवतः कृषि बहुत प्राथमिक प्रकार की थी। यहां से उपलब्ध अनाजों से ऐसा प्रतीत होता है कि नवपाषाणिक मानव जंगल की सफाई से लेकर फसल कटने तक के कृषि सम्बन्धित विभिन्न क्रिया—कलापों से सुपरिचित थे। सर्वप्रथम नवपाषाणिक मानव ने कृषि के लिए जंगली भूमि को साफ किया होगा। वृक्षों और पौधों को काटने का एक मात्र उपयुक्त उपकरण प्रस्तर की कुल्हाड़ी थी। सम्भवतः इसके लिए उन्होंने आग का प्रयोग भी किया था। आग के प्रयोग से सभी वनस्पतियां जलकर राख हो गई होंगी, जो मिट्टी में मिलकर उर्वरा षक्ति में वृद्धि की होंगी। पहाड़ी क्षेत्रों की आदिम जातियां इस तरह के कार्य झूम कृषि में करते थे। कृषि के दूसरे चरण में जमीन की जुताई की जाती थी, जिसके लिए लकड़ी से निर्मित प्रारम्भिक/आदिम प्रकार के खोदने वाले उपकरणों का प्रयोग किया जाता था। लेकिन उत्खननों से लकड़ी से निर्मित इस प्रकार के उपकरण उपलब्ध नहीं हैं। तीसरे चरण में बीज बोया जाता था। बोने का कार्य मानसून की वर्षा से प्रारम्भ होता था। इसके उपरान्त जब तक फसल पक नहीं जाती थी तब तक उसकी देख—भाल की जाती थी और अन्त में फसल काटने का कार्य होता था।

मध्य गंगाघाटी के नवपाषाणिक मानव के खाद्यसामग्री के रूप में अनाज के साथ ही साथ खाद्य का एक बड़ा भाग पषुओं का मांस था। सम्भवतः बकरी, सुअर, भैसा, गैड़ा, हिरन, बैल आदि के मांस खाने में प्रयुक्त होते रहे होंगे। सबसे अधिक संख्या में हिरन की हड्डियां प्राप्त हुई हैं[17]। इसके उपरान्त भैंसे, बैल, सुअर और बकरी की हड्डियां आती हैं। पालतू पषुओं में कूबड़ युक्त बैल (बांस इंडिकस),सुअर (सुस डोमोसिकस) और कुत्ता (केनिस फेमिल पारिस) सम्मिलित हैं। जंगली पषुओं के अन्तर्गत गैंडा (रेनोसेरस यूनीकारनिस), हांथी (एलिफस मैकमस), हिरण (सर्वस बसिलि), चीतल (एविसस एक्सिस) आदि सम्मिलित हैं[18]। क्योंकि अधिकांष हड्डियों पर काटने के निषान हैं, जिससे लगता हैं कि इन पषुओं को मांस के लिये काटा गया रहा होगा। उत्खनन में मछली, सीपी, घोंघे, की हड्डियां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हुई हैं। झीलों ओर

नदियों से ये मछलियां पकड़ी जाती थीं। उत्खनन में पक्षियों की हड्डियां भी मिली हैं। जंगली क्षेत्रों में खाने योग्य वनस्पतियां भी एकत्र की जाती थीं। इस प्रकार विभिन्न स्रोतो से उपलब्ध संतुलित आहार नवपाषाणिक लोगों को उपलब्ध था।

नवपाषाण कालीन संस्कृति की अर्थव्यवस्था में षिकार संग्रह और मछली पकड़ने के महत्वपूर्ण स्थान थे। उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी के क्षेत्र में उनकी स्थिति तथा खरीफ और रबी के फसलों के आधार पर कृषि का भी महत्वपूर्ण योगदान था। उन्हें जलवायु सम्बन्धी परिस्थितियों और फसलों के चक्र का भी ज्ञान था। सम्भवतः कृषि में उनका आवास स्थल (अधिवास प्रक्रिया) का महत्वपूर्ण योगदान रहा होगा, क्योंकि अब वे अपने पूर्वजों के संचरणषील जीवन का परित्याग कर दिये और स्थाई रुप से एक स्थान पर आवास बनाने लगे। चिरांद व कोल्डिहवा जैसे उपयुक्त स्थल पर बाढ़ और अग्नि जैसे प्राकृतिक विपत्तियों के बावजूद एक ही स्थान पर रहते रहे। पाषाण उद्योग के स्थान पर हड्डी के उपकरण और विभिन्न प्रकार की पात्र–परम्पराओं का विकास हुआ। मनके, मृण्मूर्तियाँ और आभूषणों तथा मिट्टी के बर्तनों पर चित्र के रूप में कला का विकास उल्लेखनीय है। चिरांद जैसे ही प्रमाण उस क्षेत्र के अन्य नवपाषाणिक स्थलों– चेचरकुतुबपुर, ताराडीह, सेनुवार, इमलीडी और सोहगौरा जैसे स्थलों से भी प्राप्त हुए है। मध्य गंगा के मैदान को इन पाषाण कालीन स्ंस्कृतियों ने परवर्ती विकसित संस्कृतियों को ठोस आधार प्रदान किया था।

सन्दर्भ सूची

1. वर्मा, आर0के0 (1971)ः भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियाँ, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 8–9.
2. वही.
3. परसन, जे0आर. (1972)ः आर्कियोलॉजिकल सेटेलमेन्ट पैटर्न्स, एनुवल रिव्यू ऑफ एन्थ्रोपोलॉजी नं0–1, पृ0 सं0 127–150.
4. चाइल्ड, वी0जी0 (1942)ः सोषल एवोल्यूषन, लंदन.
5. बिनफोर्ड, एल0आर0 (1964)ः ए कन्सीडरेषन ऑफ आर्कियोलॉजिकल रिसर्च डिजाइन, अमेरिकन एन्टीक्यूटी 29, पृ0सं0 425–441.
6. धवलीकर, एम0के0 और पोसल, जी0एल0 (1974)ः सब्सटेन्स पैटर्न्स ऑफ ऐन अर्ली फार्मिंग कम्युनिटी ऑफ वेस्टर्न इण्डिया, पुरातत्व नं0–7, पृ0सं0 39–46.
7. मिश्र, वी0डी0 (1970)ः चाल्कोलिथिक कल्चर्स ऑफ इस्टर्न इण्डिया द इस्टर्न एन्थ्रोपोलॉजिस्ट–18, नं0–3, पृ0सं0–249.
8. पाण्डेय, जे0एन0 (1986)ः पुरातत्व विमर्ष, प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद.
9. पाल, जे0एन0 (1994)ः मेसोलिथिक सेटेलमेंट इन द गंगा वैली, मैन एण्ड इनवायर्नमेन्ट, वाल्युम–19, पृ0सं0–95–101.
10. दुबे, ए0के0 (2005)ः मध्य गंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया, जौनपुर जनपद के विषेष संदर्भ में, स्वाभा प्रकाषन, इलाहाबाद.
11. लाल, मक्खन (1989)ः सेटलमेन्ट पैटर्न एण्ड राइज ऑफ सिविलाइजेषन इन मिडिल गंगा–यमुना दोआब, नई दिल्ली.
12. उत्तर प्रदेश शासनः सूचना पुस्तिका 2014 से साभार.
13. दुबे, ए0के0 (2005)ः मध्य गंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया, जौनपुर जनपद के विषेष संदर्भ में, स्वाभा प्रकाषन, इलाहाबाद.
14. प्राग्धारा (2006)ः अंक 18.
15. कौषाम्बी, डी0डी0 (1963)ः दी बिगनिंग आफ द आयरन ऐज इन इण्डिया, जर्नल ऑफ इकोनॉमिक एण्ड सोषल हिस्ट्री ऑफ ओरिएण्ट 6, पृ0सं0 309–318.
16. वही.
17. लाल, बी0बी0 और के0एन0 दीक्षित (1977)ः श्रृंगवेरपुर ए साइट ऑफ प्रोटोहिस्टॉरिक पीरिएडः इण्डियन प्रीहिस्ट्री, 1980 (सम्पा0) वी0डी0 मिश्र और जे0एन0 पाल, पृ0सं0–303–307.
18. पाण्डेय, जे0एन0 (1986)ः पुरातत्व विमर्ष, प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद.